

दूसरी नज़र

पी चिदंबरम

रेंद्र मोदी ने 2014 के चुनावों में अर्थव्यवस्था को लेकर बहुत ही विचारहीन टिप्पणी की थी। उसका मैंने यह कहते हुए जवाब दिया था कि 'श्री मोदी को अर्थशास्त्र की जितनी समझ है उसे एक डाक टिकट के पीछे लिखा जा सकता है। यह एक उचित ही टिप्पणी थी। लेकिन मेरा मानना है कि मोदी ने उस टिप्पणी के लिए मुझे माफ नहीं किया है। कोई बात नहीं, लेकिन वक्त ने साबित कर दिया कि मैं सही था।

मोदी सरकार के पांच साल पूरे होने पर हम सरकार की भूल-चूक का एक लंबा आरोपपत्र तैयार कर सकते हैं। मेरे विचार से इसमें सबसे ऊपर अर्थव्यवस्था का प्रबंधन होगा। अर्थव्यवस्था के कुप्रबंधन के कारणों में पहला कारण तो यह है कि प्रधानमंत्री को वृहद अर्थशास्त्र के बारे में कुछ नहीं मालूम और वे इस बारे में कुछ सीखना भी नहीं चाहते। दूसरा कारण यह कि व्यापार, कारोबार, निवेशक और उपभोक्ता नीतिगत बदलावों को किस तरह से लेंगे, इसकी भविष्यवाणी कर पाने में वित्तमंत्री की अक्षमता, और तीसरी वजह यह कि सरकार में अर्थशास्त्रियों को नजरअंदाज किया जाना और नौकरशाहों पर जरूरत से ज्यादा भरोसा।

एक अलग लीग

भारत की सरकार को चलाना राज्य सरकार चलाने से काफी अलग है। एक मुख्यमंत्री को विनिमय दर या चालू खाते का घाटा या मौद्रिक नीति या बाह्य घटनाओं (जैसे-अमेरिका और चीन के बीच दरों को लेकर युद्ध या ईरान पर अमेरिकी पाबंदियां) के बारे में कोई चिंता नहीं करनी पड़ती। अगर एक मुख्यमंत्री राज्य के राजस्व का प्रबंधन और खर्च पर नियंत्रण कर लेता है, केंद्र सरकार से बड़ी मदद मिल जाती है और राज्य में पर्याप्त निजी निवेश को आकर्षित कर लेता है तो वह आर्थिक प्रबंधन में काफी अच्छा कर ले जाएगा। कई मुख्यमंत्रियों ने ज्यादा औपचारिक शिक्षा के बिना भी अपने राज्य की अर्थव्यवस्था के प्रबंधन में खासा श्रेय हासिल किया है।

भारत की अर्थव्यवस्था का प्रबंधन एक अलग लीग में खेलने जैसा है। सफल मुख्यमंत्री भी

अर्थव्यवस्था खतरे में

इसमें तब लड़खड़ा गए, जब उन्हें वित्तमंत्री बनाया गया। दूसरी ओर, बिना राजनीतिक अनुभव वाले डॉक्टर मनमोहन सिंह एक शानदार वित्तमंत्री थे, क्योंकि वृहद अर्थशास्त्र में माहिर थे और मशहूर अर्थशस्त्रियों के साथ लगातार विमर्श करते रहते थे। बिना डॉ. सिंह के न कोई उदारीकरण हो पाता, न अन्य सुधार, जो उन्होंने किए।

एक के बाद एक गलती

जब अर्थशास्त्र का प्रबंधन किसी नौसिखिए या निरंकुश के हाथ में सौंप दिया जाता है, तो उसके नतीजे भी जल्दी ही सामने आने लगते हैं। नोटबंदी इसका सबसे बढ़िया उदाहरण है। किसी इंटरपास अर्थशास्त्री ने भी प्रधानमंत्री को चलन में जारी मुद्रा का छियासी फीसद हिस्सा अवैध घोषित करने की सलाह नहीं दी होगी। फिर भी ऐसा किया गया। चूंकि अरुण जेटली ने कभी भी सार्वजनिक रूप से इस बात की जिम्मेदारी नहीं ली, इसलिए यही निष्कर्ष निकाला जाना चाहिए कि यह प्रधानमंत्री का फैसला था। उनको श्रेय देने के बजाय प्रधानमंत्री ने ही जिम्मेदारी अपने पर ले ली, लेकिन उन्होंने यह मानने से इनकार कर दिया कि नोटबंदी से अर्थव्यवस्था पटरी से उतर गई, छोटे और मझोले उद्योग खत्म हो गए, नौकरियां चली गईं और कृषि क्षेत्र में संकट गहरा गया

नोटबंदी के बाद और कई गलत फैसले होते गए। जो बजट बनाए जाते रहे उनमें कहीं भी इंसान के आर्थिक व्यवहार की समझ की झलक नजर नहीं आती। जीएसटी बहुत ही खामियों से भरा हुआ बनाया गया और बहुत ही जल्दबाजी में लागू कर दिया गया, एनपीए के मामले निपटाने में भी बहुत ही अकुशलता रही, राजस्व लक्ष्य बिल्कुल अव्यावहारिक रखे गए और इन्हें हासिल करने के लिए निरंकुश शक्तियों और अनुचित तरीकों का इस्तेमाल किया गया, और बुनियादी आर्थिक समस्याओं के लिए नौकरशाही के चलताऊ तरीके खोजे गए।

रिपोर्ट कार्ड निराशजनक

वित्त मंत्रालय के आर्थिक मामलों के विभाग ने पांच वित्त वर्ष पूरे होने के मौके पर एक रिपोर्ट कार्ड तैयार किया है। इसमें नोटबंदी के बाद वर्षों जो 2016-17 के बाद शुरू हुए, के आंकड़े दिए गए हैं। रिपोर्ट के कुछ खास शीर्षकों के बारे में मैं आपको बताता हूं-

- वित्त वर्ष 2016-17, 2017-18 और 2018-19 में वास्तविक जीडीपी वृद्धि 8.2 से 7.2 और

फिर सात फीसद पर आ गई। 2018-19 की चौथी तिमाही में यह वृद्धि साढ़े छह फीसद थी।

- सकल वित्तीय घाटा जीडीपी का 3.5, 3.5 और 3.4 फीसद रहा। 2018-19 के लिए आखिरी आंकड़ा संदेहास्पद है, क्योंकि कर संग्रह में संशोधित अनुमान के मुकाबले ग्यारह फीसद की कमी

- पूंजीगत खर्च स्थिर बना रहा, 2018-19 में यह जीडीपी का 1.7 फीसद रहा और यही 2015-

- जीडीपी अपस्फीति, जो महंगाई का ही दूसरा रूप है, 3.1 से बढ़ कर 4.2 फीसद हो गई।

- चालू खाते का घाटा जीडीपी के 0.6 फीसद से बढ़ कर 1.9 और फिर 2.6 फीसद तक पहुंच गया। - निजी उपभोग खर्च और सरकारी उपभोग खर्च दोनों ही स्थिर बने रहे।

- निवेश दर 28.2 और 28.9 फीसद के बीच ही बनी रही, जो 2011-12 में हासिल 3.3 फीसद से काफी नीचे है।

- कृषि क्षेत्र में सकंट गहराने की वजह से जीवीए की वृद्धि दर तेजी से घटती हुई 6.3 से 5.0 और फिर 2.7 फीसद पर आ गई।

- उद्योग में जीवीए की दर स्थिर बनी रही, सेवाओं में जीवीए की दर घटती हुई 8.4 से 8.1 और फिर 7.4 फीसद पर आ गई।

- वित्त वर्ष 2018-19 में पोर्टफोलियो निवेश ऋणात्मक हो गया।

भाजपा की शेखियां हवा हो गई हैं। अर्थव्यवस्था की हालत को लेकर हमें जो डर सता रहा था. वह सही साबित हुआ। और, केंद्रीय सांख्यिकी कार्यालय (सीएसओ जो कि कई अर्थशास्त्रियों की नजर में पहले ही से संदिग्ध है) भी संदेह के घेरे में आ चुका है। एनएसएसओ, जिसने पिछले पैंतालीस साल में बेरोजगारी की दर सबसे ज्यादा होने की बात कही है, ने कारपोरेट मंत्रालय के (एमसीए 21) डाटाबेस, जिसे सीएसओ ने इस्तेमाल किया, की हवा निकाल कर रख दी है। इसने बताया है कि एमसीए 21 डाटाबेस की छत्तीस फीसद कंपनियां या तो बंद हो गई हैं, या उनका कोई अता–पता नहीं है!

पिछले कई वर्षों में भारत की अर्थव्यवस्था आज सबसे कमजोर हालत में है। इसलिए मोदी आर्थिकी को छोड़ कर दूसरी बातें कर रहे हैं। जो लोग 12 मई और 19 मई को वोट डालेंगे, उनके लिए यह खतरे की घंटी है।

दलित उत्पोड़न का सिलिसिला

प्रसग

गैर-दलितों को यह बात

उनके दुख-सुख के सच्चे

साथी दलित ही हैं।

राजनेता अपने स्वार्थों के मद्देनजर

आपके जख्मों पर मरहम लगाने

जरूर खड़े हो जाएंगे, लेकिन सच्चे

अर्थों में समाज की

तरक्की सामाजिक

समरसता से ही संभव है।

समझने की जरूरत है कि

रोहित कौशिक



🔳 ल में उत्तराखंड के एक गांव में ऊंची मानी जाने वाली जाति के लोगों के सामने बैठ कर खाना खाने पर दबंगों ने एक दलित युवक की

बेरहमी से पिटाई कर दी, जिसके चलते उसकी मौत हो गई। दलित युवक अपने रिश्तेदार की शादी में गया था। वह कुर्सी पर बैठ कर खाना खाने लगा। इस बीच एक तथाकथित ऊंची जाति का व्यक्ति वहां आया और उसे कर्सी से उठने को कहा। फिर उस युवक की बुरी तरह पिटाई की गई। कुछ समय पहले गुजरात में मूंछ रखने और गरबा आयोजन में शामिल होने के कारण दलितों से मारपीट और उनकी हत्याओं की घटनाएं सामने आई थीं। इस प्रगतिशील दौर में भी अगर अपनी तथाकथित श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए ऊंची जातियों द्वारा दलितों से मारपीट की जा रही है तो इसे किस विकास का नाम दिया जाएगा।

यह विडंबना ही है कि इस तथाकथित विकास की चकाचौंध में हम अब भी आत्मिक विकास नहीं कर सके हैं। कटु सत्य यही है कि इक्कीसवीं सदी में भी हम दलितों के प्रति अपने पूर्वाग्रह त्याग नहीं पाए हैं। आज भी दलितों का विकास हमारी आंखों में चुभता है और उनकी खुशी हमसे सही नहीं जाती। दलितों से मारपीट की घटनाओं के मूल में ऊंची जातियों का अपने

आप को श्रेष्ठ मानने और दलितों को कमतर सिद्ध करने का भाव ज्यादा है।

यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि हमारे देश में जहां एक ओर नई दलित चेतना विकसित हुई है, वहीं दूसरी ओर दलितों पर अत्याचार के मामले बढे हैं। हम अब भी वैचारिक रूप से रूढ़िवादी जकडनों से बाहर नहीं निकल पाए हैं। एक रिपोर्ट के अनुसार हमारे देश में सैंतीस फीसद दलित गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करते हैं, जबिक चौवन

फीसद दलित कपोषित की

श्रेणी में आते हैं। हर अठारह मिनट पर एक दलित के खिलाफ अपराध घटित होता है। दुर्भाग्यपूर्ण है कि अभी तक हम दलितों को वह सम्मान नहीं दे पाएं हैं, जिसके वे हकदार हैं। गैर-दलितों में दबंगई का भाव कायम है, जिसके कारण हम दिलतों को अपने गले नहीं लगा पाए हैं। गैर-दलितों में श्रेष्ठता बोध ही अनेक समस्याओं को जन्म दे रहा है। गैर-दलितों का यह श्रेष्ठताबोध समय-समय पर प्रकट होकर हमारे समाज के खोखले आदर्शवाद की पोल खोलता रहता है। खोखले आदर्शवाद का आलम यह है कि हम अपने आपको दलितों का हितैषी सिद्ध करने के लिए आंबेडकर की मूर्ति पर पुष्प अर्पित करने का नाटक करते रहते हैं, लेकिन दूसरी तरफ दलितों को नीचा दिखाने का कोई भी मौका चूकते नहीं हैं। दुर्भाग्यपूर्ण है कि आज आंबेडकर के आदर्शों से किसी को कोई मतलब नहीं है। दरअसल, आंबेडकर ने इस सत्य को बहुत पहले समझ लिया था कि जब तक दलित वर्ग अपनी शक्ति को पहचान कर सत्ता का भागीदार नहीं बनेगा, उसकी उपेक्षा होती रहेगी। यही कारण था कि उन्होंने दलितों के आरक्षण की वकालत की।

पर सवाल है कि क्या इस दौर में सत्ता का भागीदार बने दलित नेताओं को वास्तव में आंबेडकर के विचारों और आदर्शों की चिंता है? आज हर राजनीतिक दल अपने स्वार्थ के लिए आंबेडकर के नाम का इस्तेमाल कर रहा है। यही कारण है कि आज भी आम दलित को शोषण का शिकार बनाया जा रहा है। यह विडंबना ही है कि आज राजनीतिक दल आंबेडकर के नाम का इस्तेमाल अपने उत्थान के लिए कर रहे हैं, न कि दलितोत्थान के लिए। सवाल है कि आजादी के बाद राजनेताओं ने आंबेडकर-आंबेडकर चिल्लाने और आंबेडकर के नाम पर विभिन्न परियोजनाओं का नामकरण करने के अलावा किया ही क्या है? क्या आजादी के बाद हमारे राजनेता आंबेडकर के आदर्शों को आत्मसात कर पाए हैं ? क्या केवल आंबेडकर के नाम पर पार्क

बना देने, उनकी मूर्तियां स्थापित कर देने और उनके विचारों को विचार-गोष्टियों में दोहरा देने मात्र से हम इस दौर में आंबेडकर को प्रासंगिक बना सकते हैं ? शायद नहीं।

बड़ी-बड़ी रैलियां आयोजित कर पानी की तरह पैसा बहा देना आंबेडकर का सपना नहीं था। करोड़ों रुपए का हार पहन कर भव्य पंडाल में दलितों और अपने अनुयायियों लिए महाभोज आयोजित करना भी बाबा साहब की प्राथमिकताओं में नहीं था। क्या ऐसे आयोजनों से वास्तव में दलितों का स्वाभिमान जाग सकता है ? हमारे राजनेता कुछ हजार या लाख लोगों को भव्य भोज देने के बजाय गांव के आखिरी आदमी को दो जून की रोटी देने के बारे में कब सोचेंगे? आंबेडकर ने दलितों के जिस स्वाभिमान की बात की थी वह वोट बैंक की राजनीति से प्रेरित नहीं था।

इस दौर में सबसे दुखद यही है कि वोट बैंक की राजनीति के तहत दलितों के स्वाभिमान को जगाने की बात हो रही है। जब विभिन्न दलों के राजनेता दलितों के साथ खाना खाते और दलितों के घर में रात गुजारते हैं तो दलितों का स्वाभिमान जागने लगता है। लेकिन जैसे ही ये नेतागण अपने महल में वापस लौटते हैं, दलितों की जिंदगी पुराने ढर्रे पर लौटने लगती है। अनेक आश्वासनों के बाद जब दोबारा दलितों को पुरानी समस्याओं से दो-चार होना पड़ता है, तो उन्हें स्वयं महसूस होने

> लगता है कि यह वोट बैंक का छलावा है। राजनेताओं के स्वाभिमान जगाने की इस खोखली प्रक्रिया से दलित अपना पुराना स्वाभिमान भी खो देते हैं। दरअसल, यह दलितों को उठाने की नहीं बल्कि गिराने की एक कृटिल चाल है। जो दलित सत्ता के पिछलग्गू बन राजनेताओं की इस चाल का हिस्सा बन जाते हैं, उनका स्वाभिमान अभिमान में बदल जाता है और दूसरे दलितों के प्रति उनका व्यवहार भी शोषणकारी हो जाता है। जबिक आम दलित का

स्वाभिमान अपने पुराने स्तर से भी नीचे गिर जाता है। इन नारों और अभियानों मे एक

आम दलित के हाथ कछ नहीं लगता। आंबेडकर ने अन्यायपूर्ण सामाजिक विषमता के विरुद्ध विद्रोह किया और पूरी शक्ति से इसे मिटाने का प्रयत्न किया। सवाल है कि आज हर क्षेत्र में जागरूकता आने के बाद भी क्या जाति प्रथा मिट सकी है? राजनेताओं ने जाति प्रथा को और अधिक बढ़ाया है। किसी संसदीय क्षेत्र में उम्मीदवार की जाति के लोगों की संख्या देख कर ही टिकट का बंटवारा किया जाता है। तमाम समाजशास्त्रीय अध्ययनों और विमर्शों के बावजूद जाति अपना अस्तित्व बनाए हुए है। केवल राजनेताओं को दोष क्यों दें, समाज भी जाति की राजनीति कर रहा है। जाति के मुद्दे पर हमारे राजनेताओं और समाज का गठजोड़ ही अंततः अनेक विसंगतियों को जन्म दे रहा है। पहले यह आशा व्यक्त की गई थी कि शायद शिक्षा का प्रचार-प्रसार होने से इस स्थित में परिवर्तन आएगा, लेकिन आज इस शिक्षित समाज में भी जातिगत भेदभाव की खबरें प्रकाश में आ रही हैं।

जाति प्रथा की तीव्रता का अंदाजा इस बात से ही लगाया जा सकता है कि हरियाणा में एक संगठन के आदेश पर ही दलितों के घर जला दिए गए. मगर इन विसंगतियों पर राजनेताओं का ध्यान क्यों जाएगा? दलितोत्थान के बारे में सोचने की फुरसत तो तब होगी, जब उन्हें अपने उत्थान की योजनाओं से फुरसत मिले। पूरे देश में दलितों के साथ हो रही मारपीट की घटनाओं ने एक बार फिर हमें आईना दिखा दिया है। गैर-दलितों को यह बात समझने की जरूरत है कि उनके दुख-सुख के सच्चे साथी दलित ही हैं। राजनेता अपने स्वार्थों के मद्देनजर आपके जख्मों पर मरहम लगाने जरूर खड़े हो जाएंगे, लेकिन सच्चे अर्थों में समाज की तरक्की सामाजिक समरसता से ही संभव है। आज जरूरत इस बात की है कि हम स्वयं ऐसे समाज का निर्माण करें, जिसमें बिना किसी भेदभाव के एक-दूसरे को गले लगाया जा सके।

वार, पलटवार

जीव गांधी इस चुनाव में मुद्दा बन गए हैं और दोष उनके साहबजादे का है। महीनों से बिना कोई सबूत पेश किए 'चौकीदार चोर है' चिल्लाते

के मकसद से। चुनाव अभियान शुरू होने के बाद उनकी प्रधानमंत्री ने इसका लाभ उठाया है चतुराई से। भ्रष्टाचारी नंबर आवाज कुछ ज्यादा ऊंची हो गई है, सो आखिरकार प्रधानमंत्री

को पलटवार करना ही पड़ा पिछले हफ्ते। कह दिया एक आमसभा को संबोधित करते हुए कि 'नामदार' न भूलें कि उनके पिताजी मिस्टर क्लीन माने जाते थे जब उनका कार्यकाल शुरू हुआ और अंत में भ्रष्टाचारी नंबर वन बन गए थे। नरेंद्र मोदी का यह बयान तीखा तो था, लेकिन सच था। मुझे याद है अच्छी तरह 1989 वाला आम चुनाव। याद है कि छोटे-छोटे गांवों में लोकगीत गाया करते थे बोफर्स को लेकर। एक लोकगीत की पंक्ति आज भी याद है मुझे- 'इटली के दामाद तेरे बस का हिंदुस्तान नहीं'।

उस 1989 वाले चुनाव अभियान के शुरू होने से पहले साबित हो गया था कि बोफर्स सौदे में भारत सरकार के कुछ आला

सदस्यों ने रिश्वत खाई थी। मालूम यह भी हो गया था कि बोफर्स कंपनी के अधिकारियों ने दिल्ली आकर रिश्वतखोरों के नाम बताने की पेशकश की थी। राजीव गांधी ने नाम सार्वजनिक नहीं होने दिए राष्ट्र सुरक्षा का हवाला देकर। राजीव की हत्या के बाद जब सोनिया गांधी ने देश का प्रधानमंत्री नियुक्त किया, तो मेरी दोस्त चित्रा सुब्रमण्यम की खोजी पत्रिकारिता ने ढूंढ़ निकाला कि बोफर्स का कुछ रिश्वत का पैसा सोनिया गांधी के करीबी दोस्त ओत्तावियो और मारिया क्वात्रोकी के स्विस बैंक खातों में पाया गया है। खबर मिलते ही क्वात्रोकी अपने परिवार को लेकर भारत से हमेशा के लिए भाग गए। कांग्रेस पार्टी आज तक समझा नहीं पाई है कि बोफर्स ने क्वात्रोकी को रिश्वत क्यों दी थी। कुछ तो कारण होगा न?

यह भी सच है कि बोफर्स के राज छिपाए रखने में भारतीय जनता पार्टी ने भी मदद की है। अटल बिहारी वाजपेयी जब प्रधानमंत्री बने थे, क्वात्रोकी जिंदा थे। उनको भारत लाया जा

सकता था, लेकिन सीबीआइ ने उनको लाने के लिए इतनी के मतदाताओं को कि इस चुनाव में एक चायवाले के बेटे के कमजोर दलीलें रखीं विदेशी अदालतों में कि बात कभी बनी सामने खड़े हैं एक शहजादे, जिन्होंने दशकों से भारत को नहीं। ऐसा उन्होंने क्यों किया, अभी तक किसी को मालूम नहीं अपनी जागीर समझ रखा है। ऊपर से जब शहजादे की बहन फिरते रहे नरेंद्र मोदी की छवि को कलंकित करने है। खैर, राजीव जब पात्र बन ही गए हैं इस आम चुनाव में तो अपने भाषण में कहती हैं मोदी के बारे में कि उसने 'इतना वन कहने के बाद उन्होंने आरोप लगाया कि राजीव गांधी

> वक्त की नद्धा तवलीन सिंह

लगता है, राजीव गांधी को इस आम चुनाव में पात्र बनाया है सोची-समझी रणनीति के तहत। लगता है, 'चौकीदार चोर है' इतनी बार चिल्ला कर राहुल गांधी ने नुकसान अपना ज्यादा किया है और मोदी का कम। कुछ दिनों में पता लग जाएगा।

> आइएनएस विराट को टैक्सी बना कर अपने परिवार और दोस्तों को लक्षद्वीप ले गए थे 1988 में छुट्टियां मनाने।

नौसेना के कई अफसरों ने सफाइयां दी हैं राजीव गांधी के पक्ष में। कहा है कि आइएनएस विराट पर एक भी विदेशी नागरिक ने कदम नहीं रखा था, लेकिन इंडियन एक्स्प्रेस अखबार ने पिछले हफ्ते अपना एक पुराना लेख दुबारा छाप कर साबित किया है कि नौसेना के समुद्री जहाजों और हेलीकॉप्टरों का कई तरह से दुरुपयोग हुआ था। आइएनएस विराट की खबर सोशल मीडिया पर वायरल होते ही अन्य पुरानी तस्वीरें दिखने लगीं। ऐसी तस्वीरें, जिनमें स्पष्ट दिखता है कि नौसेना का इस तरह का दुरुपयोग पंडित नेहरू के जमाने से होता रहा है। पंडितजी अपनी बेटी और नवासों को इंडोनेशिया लेकर गए थे नौसेना के एक जहाज पर।

पुरानी तस्वीरें हैं ये उस पुराने दौर की, जो बहुत पहले खत्म हो गया है। लेकिन इन तस्वीरों ने याद दिलाया है देश

कमजोर और कायर प्रधानमंत्री कभी नहीं देखा है' अपनी जिंदगी में. तो याद दिलाती हैं कि देश के तकरीबन सारे प्रधानमंत्री उनके परिवार के ही थे।

> एक समय था जब नेहरू-गांधी परिवार का करिश्मा इतना था कि मतदाता उनके चेहरे देख कर ही वोट दे दिया करते थे। रायबरेली और अमेठी में शायद ऐसा इस बार भी होगा, लेकिन देश बहुत बदल गया है अब और अशिक्षित मतदाता भी

जानते हैं कि किसी राजनेता के तथाकथित करिश्मे को वोट देने से उनको कोई फायदा नहीं होता है। करिश्मा पर वोट देना काफी हद तक इसलिए बंद हो गया है भारत में। हमने इसको 2014 के आम चुनाव में देखा था।

मोदी ने उस चुनाव में मतदाताओं को कभी याद दिलाना नहीं भूला कि उनके मुख्य प्रतिद्वंदी एक 'शहजादे' थे। इस आम चुनाव में उसी शहजादे ने उनको चुनौती देकर पिछले पांच वर्षों का उनसे हिसाब मांग कर मतदाताओं को याद दिलाया कि

परिवर्तन और विकास के वादे 'झुठे' थे। याद दिलाया कि दो करोड़ रोजगार हर साल देने का वादा भी झुठा निकला। मगर साथ में जब कांग्रेस अध्यक्ष और उनकी बहन बार-बार यह भी याद दिलाते रहे हैं कि उनके परिवार के कितने सदस्यों ने देश के लिए कुर्बानियां दी हैं, तो यह भी याद दिला दिया है गलती से कि उनके परिवार के दिवंगत सदस्य कितने वर्षों से राजा बन कर राज करते आए हैं भारत पर।

इसका लाभ मोदी पूरी तरह उठाने में शायद सफल होंगे। अपने हर इंटरव्यू में अब कहना नहीं भूलते हैं कि उनको गालियां उनके विरोधी सिर्फ इसलिए देते हैं, क्योंकि वे एक गरीब परिवार से आते हैं। वे कामदार हैं नामदार नहीं। लगता है, राजीव गांधी को इस आम चुनाव में पात्र बनाया है सोची-समझी रणनीति के तहत। लगता है 'चौकीदार चोर है' इतनी बार चिल्ला कर राहुल गांधी ने नुकसान अपना ज्यादा किया है और मोदी का कम। कुछ दिनों में पता लग जाएगा।

सांप तुम सभ्य तो हुए नहीं

ब कुछ तुरंत होता दिखता है। इधर मारा। उधर हंसी उठी। इधर गरियाया, उधर ताली पड़ी।

आह, वो 'थप्पड़', जो किसी सुरेश ने केजरीवाल को मारा! थप्पडी हिंसा को 'कंडम' करने की जगह एंकरजन थप्पड-चर्चा में लग गए: मारने वाला कौन था? किसका था? भाजपा का था कि 'आप' का था? परे दिन चैनल 'थप्पड' को बेचते रहे।

ुकुछ दिन बाद 'आप' की आतिशी का नंबर लगा। एक) तरह पंजाब के चुनाव के ऐन पहले कांग्रेस की बजाते रहे।

निहायत 'सेक्सिस्ट' पर्चा बांटा गया, जिसमें आतिशी का चरित्र हनन किया गया था। इस पर्चे को देख अपमान से क्षब्ध होकर वे प्रेस कान्फ्रेंस में रो पड़ीं और पर्चे के लिए सीधे गौतम गंभीर को जिम्मेदार ठहराया। उधर गंभीर बोले कि अगर पर्चे के पीछे उनका हाथ साबित कर दें, तो जीतने के बाद भी वे रिजाइन कर देंगे।

ऐसी हरकतों के खिलाफ वातावरण बनाने की जगह हमारे एंकर अक्सर ऐसे आरोप-प्रत्यारोपों को बेचने लगते हैं। क्या यही है इस बार का 'डांस आफ डेमोक्रेसी', जिसमें गालियां गाई जा रही हैं, अंदर की घृणा की राजनीति इस जनतंत्र में नंगनाच कर रही है।

हम उत्किठित होकर इंतजार करने लगते हैं कि अब किसको थप्पड़ लगा? किसकी इज्जत उतारी गई ? इस तरह की बदतमीजियों के हम न जाने कब से आदी बना डाले गए हैं। यही है नए

भारत का 'न्यू नार्मल' यानी 'सभ्यता का नया आयतन'! इस जनतंत्र में सांप भी 'सभ्य' हो गए हैं!

पूरे सप्ताह हर कहीं या तो छातीकूट 'विक्टिम हुड' का समारोह रहा या मरे को बार-बार मार कर बहादुरी दिखाई गई। एक ओर रोना कि हाय मार डाला, फिर अगले ही क्षण बदला लेने को उद्यत हो उठना! यही दो अदाएं बार-बार दुहरती हैं! एक दिन कहा गया : तुम भ्रष्टाचारी... तुम्हारे पिता

भ्रष्टाचारी... यानी कि तुम्हारी सात पुश्तें भ्रष्टाचारी... जरा देखो तो कि विराट को पर्सनल टैक्सी बना डाला... प्रमाणन के लिए पूर्व नेवी अफसरों की पूछ बढ़ गई। कुछ कहते कि विराट को टैक्सी नहीं बनाया, कुछ कहते कि बनाया!

जवाब देने एक प्रवक्ता आए। उनसे पत्रकारों ने ज्यों ही

पूछा कि 'चौरासी' में क्या उनकी भूमिका थी, तो गुस्से में कुछ का कुछ बोल गए कि चौरासी... हुआ सो हुआ! इस पर बात

कीजिए कि पांच साल में आपने क्या किया? भक्त एंकर ले उड़े कि देखा, चौरासी इनके लिए 'हुआ सो हुआ' ही है। प्रवक्ता के व्याख्याकार सफाई देने लगे कि चौरासी के लिए माफी मांग तो ली, और क्या जान लोगे? लेकिन भक्त एंकर 'हआ सो हआ' को बजाते रहे और इस

हर एकर पहले अफसोस के साथ कहता है कि हाय! हमारी भाषा

कितनी गिर गई है। फिर उसे बार-बार बजा कर, इस

गिरावट पर और भी गिरी हुई बहस कराके उसे और

गिराता जाता कि यही चलता है। यही बिकता है।

इसके आगे दो दिन तक छातीकूट हाय हाय थी: पिछले

पांच बरस में इन लोगों ने क्या-क्या नहीं कहा... ये कहा, वो

कहा, दिन-रात कहते रहे कि चोर है चोर है। अब हमने कह

दिया कि तुम्हारा पिता मरते दम तक भ्रष्ट था, तो मिर्ची लग गई...

एक-एक कर मिली गालियां गिनाते रहे और उनसे भी आगे की

गालियों को सही ठहराते रहे। यही है अपना 'डांस आफ

हमारी भाषा कितनी गिर गई है। फिर उसे बार-बार बजा कर,

इस गिरावट पर और भी गिरी हुई बहस कराके उसे और गिराता

जाता कि यही चलता है। यही बिकता है। पतन की पंजीरी ऐसे

डेमोक्रेसी' उर्फ 'डांस ऑफ गाली'!

सबके पास दूसरे के लगाए लांछनों की सूचियां रहीं। सब

हर एंकर पहले अफसोस के साथ कहता है कि हाय!

GIRGOR

सुधीश पचौरी

एक चैनल पर राम माधव आकर विपक्ष को यह कह कर सुख देते हैं कि चुनाव के बाद हमें सहयोगियों की जरूरत हो संकती है... यद्यपि हमें पूर्ण बहमत मिलेगा...महागठबंधन में जान पड़ जाती है! हमें कई पीएम नजर आने लगते हैं! पहले क्षण सुख, अगले ही क्षण दुख! दुखवा कासे कहूं मोरी सजनी! राहल को दो राहतें : एक कि बड़ी अदालत ने 'बिना शर्त

माफी' को माना। दूसरी ओर उनकी भारत की नागरिकता पर सवाल उठाने वाली याचिका को खारिज किया।

अचानक एक छिन्नमस्ता लाइन बरास्ते कोलकाता कौंधती है कि 'पीएम इज नाट माई पीएम!' हाय हाय! ये क्या कह दिया दीदी ने लेकिन दीदी दीदी हैं। जो कह दिया सो कह दिया

मिदनापुर का चुनाव अभियान। तेजी से चलती हुई ममता सड़क के दोनों ओर खड़े लोगों का हाथ जोड़ कर अभिवादन करती जाती हैं। उनकी दोनों हथेलियों के ऐन बीच फोन दबा है। इंडिया टुडे के राजदीप चलते–दौड़ते ही बात करते हैं और कमाल कि ममता तेजी से चलते हुए एक एक सवाल का दो-ट्रक जवाब देती जाती हैं और लोगों से हाथ मिलाती जाती हैं। राजदीप हांफते हुए पूछते हैं कि लोग रोड शो करते हैं, आप पैदल चलती हैं। जवाब कि लोगों से मिलने का यह हमारा तरीका है... इतना स्टेमिना कहां से आता है? ममता तूरंत कहती हैं कि पब्लिक से आता है।

एक दिन भोपाल में भभूत रचाए पांच हजार अवधूत दिग्विजय की जीत के लिए धूनी रमाए रहे और 'ह्रीं श्रीं क्लीं चामुंडाय विच्वै...' आदि नाना मंत्रों को जपते हुए हठयोग साधते रहे। एक बाबा जलते कंडों के घेरे के बीच हठयोग में बैठा रहा। उसके जटाजूट शीष पर मिट्टी के बरतन में जलता उपला रखा रहा।

एक रैली में प्रियंका ने दुर्योधन के बारे में कवि दिनकर की दो लाइनें पढ़ कर चिकत किया कि 'जब नाश मन्ज पर छाता है, पहले विवेक मर जाता है!' इसके जवाब में मानो एक 'शेर' कहा गया कि: 'न मैं गिरा न मेरे मेयार गिरे, मुझे गिराने में कुछ लोग बार बार गिरे!'

भई वाह! क्या बात है! दे ताली!

काश, हमारे नेता लोग अज्ञेय की 'सांप' कविता पढ़ लेते कि 'सांप तुम सभ्य तो हुए नहीं।...'

